ओ३म्

वैदिक शिक्षा

पूज्य स्वामी रामदेव जी महाराज के प्रवचनों से संकलित

भारतीय राज्यव्यवस्था में आदर्श रूप में स्वीकृत वैदिक शिक्षायें

- संसदीय परम्परा का आदर्श, सिद्धान्त व दर्शन–**धर्मचक्रप्रवर्तनाय** *(बौद्ध वचन)*
  –**स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः संसिद्धिं लभते नरः** *(गीता)*
- माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदर्श–**यतो धर्मस्ततो जयः** *(महाभारत)*
- माननीय विधायिका एवं कार्यपालिका का आदर्श–**सत्यमेव जयते** *(मुण्ड.)*
- सेना का आदर्श–**स्वधर्मे निधनं श्रेयः** *(श्रीमद्भगवद्गीता)*
- नौसेना का आदर्श–**शन्नो वरुणः** *(ऋग्वेद)*
- वायुसेना का आदर्श–**नभःस्पृशं दीप्तम्** *(श्रीमद्भगवद्गीता)*
- जीवन बीमा का आदर्श–**योगक्षेमं वहाम्यहम्** *(श्रीमद्भगवद्गीता)*
- राजपूताना राईफल का आदर्श–**वीरभोग्या वसुन्धरा**
- गढ़वाल रेजिमेन्ट का आदर्श–**युद्धाय कृतनिश्चयः** *(श्रीमद्भगवद्गीता)*
- आई.आई.टी. खड़गपुर का आदर्श–**योगः कर्मसु कौशलम्** *(श्रीमद्भगवद्गीता)*
- आई.आई.टी. कानपुर का आदर्श–**तमसो मा ज्योतिर्गमय** *(शतपथ ब्राह्मण)*
- दूरदर्शन का आदर्श –**सत्यं शिवं सुन्दरम्**
- पर्यटन विभाग का आदर्श–**अतिथिदेवो भव** *(तैत्तिरियोपनिषद्)*
- दूरभाष विभाग का आदर्श–**अहर्निशं सेवामहे**
- शिक्षण संस्थानों का आदर्श–**सा विद्या या विमुक्तये** (उपनिषद्)
  –**न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते** *(गीता)*

जीवन और व्यवस्था के हर क्षेत्र में हमारे पूर्वजों का यह आदर्श दर्शन रहा है। अपने ऋषियों के संकल्पों को पूर्ण करना ही हमारा कर्त्तव्य है। हम प्रत्येक व्यक्ति के जीवन और व्यवस्था में वैदिक शिक्षा और संस्कारों का पूर्ण समावेश चाहते हैं।

विषय सूची

- प्रभात संकल्प 3
- ध्यान योग 4
- प्रार्थना 6
- सफल सार्थक सुखी व समृद्ध जीवन जीने हेतु भारतीय जीवन-पद्धति, मानवीय जीवन का संविधान 8
- 20 दोषों के स्थान पर 20 गुणों का समावेश करें 10
- भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व 11
- कर्मफल का सिद्धान्त व स्वरूप 13
- कर्मफल सिद्धान्त से जुड़े कुछ प्रश्न व समाधान 14
- स्वभाव, व्यवहार व आचरण में परिवर्तन कैसे लायें? 21
- 200 करोड़ वर्ष पुरानी भारत की आध्यात्मिक संस्कृति पर कैसे भारी पड़ रहे हैं यूरोप व पश्चिम की भोगवादी व भौतिकवादी अपसंस्कृति के 200 वर्ष 27

ओ३म्

प्रभात संकल्प

1. मैं गुरु सत्ता व भागवत सत्ता एवं ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में अपनी निष्ठा अखण्ड रखूंगा। मैं गुरु सत्ता व शाश्वत के एक आदर्श प्रतिनिधि के अनुरूप ही अपना सम्पूर्ण व्यवहार व आचरण करूँगा। मैं 24 घंटा ब्रह्मभाव में रहूँगा, मैं सब सम्बन्धों में ब्रह्म सम्बन्ध, सब रूपों में ब्रह्मरूप तथा सब सुखों में ब्रह्मसुख का अनुभव करूँगा। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्, 'वासुदेवः सर्वम्', 'सियाराममय सब जग जानी'।
2. मैं अपने जीवन व मन में एक क्षण के लिए भी अज्ञान, अपवित्रता आलस्य व अविश्वास (निराशा) को स्थान नहीं दूँगा। क्योंकि जीवन में दुःख, दरिद्रता, अशान्ति व दुर्गति के ये ही कारण हैं। 'परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि'। 'अहमिन्द्रो न पराजिग्ये', 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः'।
3. मैं व्यष्टि व समष्टि में अर्थात् व्यक्ति व व्यवस्था में भगवत्ता अर्थात् भगवान् का साम्राज्य व ईश्वरीय न्याय व्यवस्था को प्रतिष्ठापित करने हेतु संकल्पित रहूँगा। सैल्फ रियलाइजेशन एवं कलैक्टिव रियलाइजेशन की साधना के सिद्धान्त में पूर्ण आस्था रखूँगा। इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तोऽराव्णः।
4. अपने पूर्वज ऋषि-ऋषिकाओं एवं वीर-वीराङ्गनाओं को

आदर्श मानते हुए मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जीवन पर पहला अधिकार भगवान् का है, दूसरा मातृभूमि का तथा तीसरा माता-पिता व गुरु का तथा अन्त में मेरा स्वयं का है। अतः हर पल आत्मा में परमात्मा की जो प्रेरणा, पुकार या आदेश उठता है उसी के अनुरूप मैं आचरण करुँगा। अपने पूर्वजों की तरह जीवन जीऊँगा।

5. योग, आयुर्वेद, स्वदेशी, शिक्षा व संस्कारों के द्वारा, निष्काम सेवा से मैं अपने जीवन व जगत् को पुण्यों से प्रकाशित करुँगा। प्रभात संकल्प के बाद प्राणों के साथ प्रणव का ध्यान करते हुए ध्यान योग से मैं दिव्य जीवन की साधना करूँगा।

ध्यानयोग

ध्यान योग की विधि

1. सिद्धासन या सुखासन में सीधे बैठकर तीन बार ओंकार व गायत्री का अर्थपूर्वक पूर्ण श्रद्धा से जप करना। जो सीधे न बैठ सकें वे शवासन या मकरासन में लेटकर संकल्प से माथे से लेकर पैरों तक पहले पूरे शरीर को दीर्घ व सूक्ष्म श्वसन के साथ शिथिल करने की प्रक्रिया का अभ्यास करें। अज्ञान, अभाव, अपवित्रता, आलस्य, अविश्वास, निराशा तथा इन सबके कारण रोग, वियोग, नुकसान, अपमान व अन्य प्रतिकूलताओं के कारण हमारे शरीर, इन्द्रियों व मन के स्तर पर कई प्रकार का गहरा तनाव, दु:ख व अशान्ति होती है। शिथिलीकरण से हम इस तनाव से पूरी तरह मुक्त होकर रुहानी यात्रा के लिए तैयार हो जाते हैं।

2. ध्वनिरहित दीर्घ व सूक्ष्म श्वास-प्रश्वासों पर ओ३म् का ध्यान करें अर्थात् श्वास लेते समय भी ओ३म् व छोड़ते समय भी ओ३म् का मन ही मन जप करें और प्राण शक्ति के साथ ब्रह्मशक्ति को, ओंकार की शक्ति को अपनी एक-एक कोशिका एवं सम्पूर्ण अस्तित्व में अर्थात् पिण्ड व अन्त में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अनुभव करें। ओंकार का अर्थ है-सर्वरक्षक, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, नित्य, अविनाशी, ज्योतिर्मय, तेजोमय, आनन्दमय व अंतर्यामी भगवान्।

3. जप करते हुए पहले एक मिनट में आठ फिर चार, दो और अन्त में एक श्वास-प्रश्वास चलने लगेगा और स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान लगने लगेगा। इस अवस्था में आकर फिर नासिकाग्र से लेकर हृदय, आज्ञा या सहस्रार किसी भी चक्र में धारणा, ध्यान, समाधि व संयम पूर्वक निरंतर इस योग साधना को करें। इस प्रक्रिया से ध्यान निश्चित रूप से लगने लगेगा। हृदयचक्र या अन्य चक्र में ध्यान लगने के बाद नीचे लिखी प्रार्थना के अनुसार श्रद्धा पूर्वक ध्यान करें और अन्त में पुनः प्राणों व प्रणव पर केन्द्रित होकर ध्यान व समाधि का आनन्द लें। संक्षिप्त ध्यान करना हो तो उठने से लेकर सोने तक जब भी समय मिले श्वासों के साथ तल्लीन होकर दीर्घ व सूक्ष्म श्वास लेते हुए प्राण व प्रणव की साधना अवश्य करें। इससे आपका पूरा जीवन सुख, शान्ति व समृद्धि से युक्त होकर आनन्दमय व योगमय रहेगा। ध्यान योग का अभ्यास प्रभात में प्राणायाम के बाद किया जाए तो अधिक सहज, सार्थक व फलदायी होगा।

प्रार्थना

1. हे प्रभो! तेरे अनुग्रह से मेरा शरीर स्वस्थ, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय प्रेम से भरा हुआ तथा अहं अभिमान शून्य हो।

2. हे सर्वव्यापक, सर्वरक्षक, सच्चिदानंदस्वरूप, आनन्दमय, ज्योतिर्मय भगवान्! आप अन्तर्यामी को हम हर पल अपने हृदय में अनुभव करें। शुद्धज्ञान, शुद्धकर्म एवं शुद्ध उपासना के द्वारा सदा आपकी शरणागति में रहें।

3. हे करुणामय पिता! हमको पूर्ण विश्वास है कि हमें निमित्त बनाकर तुम ही सर्वत्र प्रकट हो रहे हो। सभी शक्तियों, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सभी स्वरूपों, सभी सम्बन्धों तथा सभी सुखों के मूल में हे प्रभो, तेरी ही अनन्त महिमा को अनुभव करें। हे दयालु पिता! हम तेरी संतानें तेरे अनुग्रह से, तेरे प्रसाद से, तेरे प्रभाव से व तेरे प्रकाश से सदा प्रकाशित होकर तेरे महत् तेज, दिव्य ज्ञान, कर्म व भक्ति से युक्त रहें। हे प्रभो! हमारी समस्त अपूर्णताओं, क्षुद्रताओं, दुर्बलताओं, क्लेशों, वासनाओं एवं अज्ञान का विनाशकर सदा अपनी शरणागति में हमें रखना।

4. हे जगज्जननि जगदम्बे! हम तेरी संताने इस भारत माता व धरती माता पर फैले समस्त दुःखों, अज्ञान, अभाव, अन्याय व अधर्म का विनाश कर, सर्वत्र तेरा वैभव, न्याय व धर्म की प्रतिष्ठा करके अन्त में सदा-सदा के लिए तेरे अखण्ड, नित्य व शाश्वत आनन्द को प्राप्त करें। हे मातः! इस बार का ये

जन्म व जीवन अभ्युदय व निःश्रेयस को पूर्ण रूप से सिद्ध करने वाला हो जिससे बार–बार होने वाले जन्म–मरण के प्रवाह से मुक्त होकर सदा तुझसे युक्त हो जाएं।

5. हे प्राणेश्वर! प्राणों के साथ तुझ प्रणव, ओंकार की उपासना करते हुए योगबल से हम तेरे दिव्य ज्ञान, दिव्य दृष्टि, दिव्य भाव, श्रद्धाभक्ति व दिव्य कर्म की शक्ति से युक्त होकर दिव्य जीवन जीएं। तेरे यन्त्र बनकर तेरा ही काम करके जीवन व जगत् में तेरा ही सत्य साम्राज्य स्थापित करके समस्त अज्ञान, अन्याय व अभाव को दूर करके सर्वत्र भगवत्ता को प्रतिष्ठित करके अन्त मे तेरे आनन्दधाम में पहुंचे।

इस प्रकार प्रभात संकल्प व ध्यान योग से पूर्ण जागृत आत्मायें तैयार होंगी और उनके माध्यम से धरती पर स्वयं ईश्वरीय शक्ति काम करेगी, मनुष्य अपनी सभी अपूर्णताओं से मुक्त होगा, सर्वत्र भगवत्ता प्रतिष्ठाापित होगी, संसार स्वर्ग बनेगा, सब अज्ञान, अभाव, अन्याय, दुःख, दरिद्रता व अधर्म से मुक्त जीवन जीएंगे, यही हमारे जीवन का व योग का लक्ष्य है।

सफल, सार्थक, सुखी व समृद्ध जीवन जीने हेतु भारतीय जीवन-पद्धति, मानवीय जीवन का संविधान

(साथ ही संगठन के आदर्श कार्यकत्ताओं के लिए
दैनिक जीवन के लिए पाँच व्रत, नियम या मर्यादाएँ)

1. **प्रतिदिन प्रभात संकल्प व ध्यान योग के साथ एक घंटा क्रियात्मक योगाभ्यास अवश्य करना व करवाना जिससे कि हम स्वस्थ, उच्च चेतनायुक्त, रोग व दोष मुक्त, पूर्ण शान्त, सफल, सार्थक, सुखी व समृद्ध जीवन जी सकें।**
2. **जीवन में तीन बातों को सर्वोच्च प्राथमिकता या महत्व दें– (क) जानना व जीने में एकात्मता या अभेद रखना अर्थात् ज्ञानपक्ष तथा वाणी, व्यवहार, स्वभाव व आचरण में एकरूपता रखना।**

   (i) "आत्मा अर्थात् मैं" (अपने मूल अस्तित्व) के स्वरूप के बारे में ठीक-ठीक बोध होना। अर्थात् अपरिमित, अनन्त, अथाह, असीम, ज्ञान, प्रेम, कर्म या पुरुषार्थ की क्षमताओं को स्वयं में अनुभव करना और इन प्रसुप्त शक्तियों को दृढ़ संकल्प पूर्वक योग, अध्यात्म एवं वेदोक्त धर्म का अनुसरण करते हुए जागृत करना।

   (ii) मनुष्य व मनुष्येतर जड़, चेतन, सृष्टि के बारे में समझना अर्थात् सब प्राणियों को आत्मवत देखना, जड़-चेतन, जीव-जगत् के प्रति प्रेम, कृतज्ञता का भाव रखना एवं न्यायपूर्ण उपयोग का विवेक रखना।

(iii) सम्पूर्ण समष्टि की नियन्त्रक शक्ति न्यायकारी परमात्मा जो समस्त ज्ञान, प्रेम, शक्ति, सामर्थ्य, शाश्वत सुख, शान्ति एवं आनन्द का मूल स्रोत है, उसको ठीक-ठीक समझना और मन, वाणी, व्यवहार व स्वभाव के स्तर पर ब्रह्मभाव या दिव्य भाव में जीना।

(ख) दोषपूर्ण स्वभाव व दुर्व्यसनों की आदत को बदलना और अपने मूल स्वभाव में जीना।

(ग) कर्मफल व्यवस्था में पूर्ण निष्ठा रखना जिससे कि जीवन में पाप कर्म करने की सम्भावना ही न रहे।

3. **स्वदेशी व स्वाध्याय के व्रत को दैनिक जीवन में पूर्ण निष्ठा से निभाना।**
4. **भारतीय संस्कृति (वैदिक संस्कृति) व सभ्यता अथवा ऋषियों के आदर्शों व सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण निष्ठा रखना।**
5. **वाणी व्यवहार के स्तर पर 20 स्थूल दोषों को एक बार भी नहीं करना तथा विचार व संस्कार के स्तर पर इन दोषों को समाप्त या दग्धबीज करने के लिए पूरी ईमानदारी से पुरुषार्थ करना।**

स्थूल दोष– 10 यम-नियमों का पालन न करना + 5 विकारों का शिकार होना + 5 अविवेकपूर्ण आचरण करना–

1. हिसा, 2. झूठ, 3. चोरी, 4. अब्रह्मचर्य, 5. परिग्रह, 6. अशुचिता, 7. असंतोष, 8. अकर्मण्यता या विलासिता, 9. आत्मविमुखता, 10. नास्तिकता, 11. काम (भोग वासना अथवा अनैतिक यौन सम्बन्ध), 12. क्रोध (ईर्ष्या, द्वेष, अन्यों से

स्नेह न करना), 13. लोभ (अन्यायपूर्वक, सुविधा, संसाधन व धन आदि अर्जित करना), 14. मोह (अविवेक पूर्ण आसक्ति), 15. अहंकार (प्रेम का अभाव), 16. निराशा या नकारात्मकता, 17. प्रतिकूलताओं में अप्रसन्नता। (अपने या दूसरों के द्वारा अवरोध, विरोध, संघर्ष एवं प्रतिकूलता उत्पन्न करने पर प्रसन्न न रह पाना, 18. किसी भी आवेग को विवेक पूर्वक न रोक पाना उसके प्रवाह में बह जाना, 19. दुराग्रह से युक्त होना, 20. प्रतिक्रिया में जीना। ये दोष ही समस्त दुःखों के कारण हैं, तथा इन दोषों का कारण अज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति, कर्माशय व संस्कार है।

20 दोषों के स्थान पर 20 गुणों का समावेश करें

दोषों के स्थान पर 10 अहिंसा (सार्वभौमिक प्रेम) सत्यादि यमों तथा शौच (पूर्ण पवित्रता) संतोषादि नियमों का मन, वाणी, व्यवहार, आचरण व स्वभाव के स्तर पर पालन करना।

इसी प्रकार विवेक, धर्म व न्यायपूर्वक आचरण से (1) काम को सृजन व सेवा में, (2) क्रोध को अन्याय के विनाश में, (3) लोभ को परार्थ में, (4) मोह को वात्सल्य में तथा (5) अहंकार को सर्वत्र एकत्व की अनुभूति में परिवर्तित करना है तथा आचरण के दोषों के संदर्भ में, (6) निराशा व नकारात्मकता आदि के स्थान पर उत्साह, सकारात्मकता, प्रसन्नता, (7) विवेक पूर्वक आवेगों को सहना, (8) विवेक, न्याय व प्रेम पूर्वक एक मर्यादा तक सत्य के प्रति आग्रह रखना तथा (9) प्रतिक्रिया के स्थान पर प्रशान्तचित्त रहना एवं (10) प्रतिकूलताओं में धैर्यवान् रहना।

भारतीय संस्कृति के मूल तत्व

↓

धर्म

↓

धर्म का स्वरूप

यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिः स धर्मः। –*(वैशेषिक दर्शन)*

यतो धर्मस्ततो जयः –*(महाभारत)*

अभ्युदय

न्यायपूर्ण समग्र भौतिक विकास, सुविधाएं, संसाधन, समृद्धि व सम्पूर्ण सामर्थ्य को धर्मपूर्वक अर्जित करके अपने लिए जितना नितान्त आवश्यक है, उतने का उपभोग करके, शेष को सम्पूर्ण समष्टि के प्रति प्रेम व कृतज्ञता का भाव रखते हुए सबकी सेवा में उपयोग करना तथा चारों प्रकार की सात्विक ऊर्जा का उपयोग अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति करके क्षणिक सुख को जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं बनाना।

निःश्रेयस

आध्यात्मिक विकास (वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व वैश्विक जीवन में सत्य, धर्म, न्याय, विवेक, प्रेम पूर्ण आचरण व एकत्व यत्र विश्वंभवत्येकनीडम् (वेद), 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सार्वभौमिक व वैज्ञानिक दर्शन। सभी पराधीनताओं से नितान्त मुक्ति अथवा कैवल्य की प्राप्ति।

धर्म का मूल

↓

वेद

(वेदोऽखिलो धर्ममूलम्)

↓

वैदिक परम्परा का स्वरूप

ईश्वरीय ज्ञान–वेद

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

वेद त्रयीविद्या के मूल स्रोत एवं स्वतः प्रमाण हैं।

वेदाङ्ग, आर्ष ज्ञान परम्परा

शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, उपवेद–आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थवेद, उपनिषद्,

त्रयीविद्या (ज्ञान, कर्म, उपासना)

ज्ञान–आत्मा, प्रकृति, समग्र सृष्टि व परमेश्वर के स्वरूप को निर्भ्रान्त रूप से जानना व जीना।

कर्म–व्यक्ति में सन्निहित अपरिमित शक्ति, ऊर्जा व पुरुषार्थ के सामर्थ्य का जागरण करके जीवन में निरन्तर सृजन करना।

उपासना–सम्पूर्ण समष्टि की नियन्त्रक शक्ति न्यायकारी परमात्मा जो समस्त ज्ञान, प्रेम, शक्ति, सामर्थ्य, शाश्वत सुख, शान्ति एवं आनन्द का मूल स्रोत है, उसके स्वरूप को ठीक-ठीक समझना और मन, वाणी, व्यवहार व स्वभाव के स्तर पर ब्रह्मभाव या दिव्य भाव में जीना। उस सच्चिदानन्द सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी परम पावन परमेश्वर का योग साधना के द्वारा साक्षात्कार करके सभी अपूर्णताओं से मुक्त होना यही उपासना, सहज समाधि, जीवन मुक्ति, कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

षड्दर्शन, श्रोत, स्मार्त, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत, गीता आदि ऋषियों के ज्ञान परम्परा के महान् ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में वर्णित संस्कृत के एक-एक शब्द में संस्कृति एवं वैदिक सिद्धान्त समाहित है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में पुरुषार्थ चतुष्ट्य, चतुर्वर्णाश्रम धर्म, सोलह संस्कार, पंच महायज्ञ एवं जीवन के प्रत्येक पहलु के संदर्भ में हमारे पूर्वज ऋषियों ने गम्भीर अध्ययन, अनुशीलन, शोध व अनुसंधान किया है। ऋषियों का यह ज्ञान व अनुभव हमें आर्ष ग्रन्थों द्वारा या उन्हें आधार बनाकर लिखे गये शास्त्रों के द्वारा प्राप्त होता है।

परिणाम

(दिव्य जीवन व न्यायपूर्ण व्यवस्था)

व्यष्टि व समष्टि में सुख, सत्य, धर्म, शान्ति, समृद्धि व आध्यात्मिक न्यायवाद से आर्थिक एवं आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न दिव्य व्यवस्था की प्रतिष्ठापना।

कर्मफल का सिद्धान्त व स्वरूप

मनुष्येतर जीव–जगत रूपी सृष्टि का कर्मचक्र तो मर्यादित व नियन्त्रित चल ही रहा है, इस कर्मफल के सिद्धान्त व स्वरूप के ठीक–ठीक बोध होने से मनुष्य का कर्मचक्र भी मर्यादित व नियन्त्रित होगा और मनुष्य के जीवन में तथा समष्टि में भी सुख, समृद्धि व शाश्वत शान्ति स्थापित होगी।

1. **कृत, कारित, अनुमोदित, पाप, पुण्य या निष्काम कर्म (दिव्य कर्म) का फल कई गुणा या अनन्त गुणा होकर हमें ईश्वरीय न्याय व्यवस्थानुसार अवश्य मिलता है।**
2. **कर्मफल कर्म करने वाले को ही मिलता है तथा उसका प्रभाव, परिणाम, लाभ, हानि, यश व अपयश आदि अन्य व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व समष्टि को भी प्राप्त होता है।**
3. **अन्यों के द्वारा शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक या राजनैतिक आदि हानि, अपमान या जीवन हानि करने पर उसकी क्षति–पूर्ति ईश्वर अवश्य करता है।**
4. **कर्मफल (कर्माशय) के रूप में जीवों को जन्म, आयु व भोग अर्थात् सुविधा, संसाधन व समृद्धि आदि मिलती है तथा जितना हम सुविधाओं व संसाधनों (वस्त्र, भोजन, जल व विद्युत आदि) का उपयोग करते हैं उतना–उतना हमारा पुण्याशय भी क्षीण (कम) होता जाता है।**
5. **एक दिन की जिन्दगी (जीवन) जीने के लिए अन्य मनुष्य, प्रकृति, परमात्मा व करोड़ों सूक्ष्म जीव हमारी सेवा या मदद करते हैं अतः एक–एक क्षण हमें भी सब मनुष्यों तथा प्रकृति, परमात्मा व सब जीवों के प्रति प्रेम, कृतज्ञता**

व करुणा का भाव रखते हुए सबकी सेवा अवश्य करनी चाहिये। अन्यथा हम पाप के भागी बनेंगे।

कर्मफल सिद्धान्त से जुड़े कुछ प्रश्न व समाधान

इस सृष्टि में जितने भी चेतन प्राणी मात्र मनुष्य व मनुष्येतर, जलचर, स्थलचर व नभचर प्राणी हैं वे सब कर्मफल से बंधे हुए हैं और कर्म से ही मुक्त भी होते हैं। **"कर्म एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"** यद्यपि यह कर्म व कर्मफल व्यवस्था बहुत ही विस्तृत, जटिल और बहुत ही कठिनाई से समझने योग्य है, इसको शत-प्रतिशत समझ पाना अत्यन्त कठिन है फिर भी जितना हमारे जीवन के लिए समझना आवश्यक है और अपने गुरु आचार्यों से जितना सुना है, समझा है, उतना तो विचार कर ही सकते हैं।

1. **भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व क्या है? :** भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है 'धर्म'। डुधाञ् धारणपोषणयो धातु से धर्म शब्द की निष्पत्ति होती है अर्थात् जो सबको धारण व पोषण करता है वह धर्म है। वैशेषिक दर्शन में धर्म की परिभाषा इस प्रकार की है–**"यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिः स धर्मः"** अर्थात् जिसके माध्यम से भौतिक और अध्यात्मिक उन्नत्ति होती है वह धर्म है।

2. **धर्म का मूल क्या है? :** धर्म का मूल वेद है–**"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"**। वेदों में जो भी स्तुतियाँ, प्रार्थनाएँ आदि की गई हैं वो सब या तो भौतिक उन्नति के लिए हैं या फिर आध्यात्मिक उन्नति के लिए हैं।

3. **वेद किसके लिए हैं? :** वेद के भी केन्द्र में किसी को माने तो यह सारा प्रयास आत्मा की उन्नति के लिए, आत्मा को हानि

से बचाने के लिए ही हो रहा है। आत्मा अपने कर्मों व संस्कारों से बंधा हुआ है। इसलिए सर्व प्रथम हमें कर्म के प्रति ही जागरूक होना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक क्षण हम किसी न किसी कर्म से युक्त रहते ही हैं—**"न हि कश्चित क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्"**। (कर्म) कर्मफल व्यवस्था एक ऐसी ईश्वरीय न्याय व्यवस्था है, जो सदा औचित्यपूर्ण, पक्षपात रहित व न्यायपूर्ण ही होती है।

4. **कर्म का कर्त्ता कौन है? :** जो कर्म को करने, न करने या अन्यथा करने में सदा स्वतन्त्र होता है, उसे कर्त्ता कहते हैं। अतः कर्म का कर्त्ता सशरीर आत्मा है।

5. **कर्म किसे कहते हैं? :** जीव की क्रिया या चेष्टा विशेष को कर्म कहते हैं।

6. **कर्म की कितनी स्थितियाँ होती हैं? :** कर्म की तीन स्थितियाँ होती हैं—क्रियमाण कर्म, संचित कर्म व प्रारब्ध कर्म। क्रियमाण कर्म—जो हम अभी कर रहे हैं। संचित कर्म—जो हम कर चुके हैं। प्रारब्ध कर्म—जो विपाक को प्राप्त हो चुके हैं अर्थात् फल देने के लिए उन्मुख हो चुके हैं, इसी को भाग्य भी कहते हैं।

7. **कर्म कितने प्रकार के होते हैं? :** कर्म की चार श्रेणियाँ हैं—**पुण्य कर्म** (धर्म/शुभ), **पाप कर्म** (अधर्म/अशुभ), **मिश्रित कर्म** (पुण्यापुण्य) व **दिव्य कर्म**। पुण्य कर्म— जिससे हमारा व दूसरों का हित ही होता है, जैसे– योग, यज्ञ, दान, सेवादि। पाप कर्म—जिससे अपना व अन्यों का अहित ही होता है, जैसे– झूठ, चोरी व बेईमानी आदि। मिश्रित कर्म—जिस कर्म में कुछ हित और कुछ अहित भी हो रही हो, जैसे– सुविधा, संसाधन व

समृद्धि मूलककर्म। दिव्य कर्म को ही निष्काम कर्म भी कह सकते हैं अर्थात् जिससे व्यष्टि और समष्टि मुक्ति की तरफ, ईश्वर की तरफ चल पड़ती है। उपरोक्त तीन प्रकार के कर्म सभी सामान्य जनों के होते हैं तथा चौथे निष्काम कर्म या दिव्य कर्म केवल योगियों के ही होते हैं।

8. **कर्मों का फल क्या है? :** कर्मों का फल सुख या दु:ख नहीं, अपितु जाति, आयु और भोग है। आप मनुष्य जाति में पैदा होगें या पशु, पक्षी, कीट पतंग, वृक्षादि और अमुक-अमुक जाति विशेष में आपकी औसत आयु क्या रहेगी जैसे वर्तमान समय में मनुष्य की औसत आयु लगभग 100 वर्ष मान सकते हैं और उस जाति में आपको माता-पिता, घर, जमीन, जायदाद इत्यादि कैसे और कितने मिलेंगे यह हमारा विपाकोन्मुख कर्माशय तय करता है अर्थात् ये सब हमें कर्मफल के स्वरूप मिलते हैं। जितना-जितना परहित या अहित हमने किया है उससे कई गुणा अधिक फल मिलता है और जितना-जितना हमनें भोग लिया उतना-उतना कर्माशय (भाग) वर्तमान में से कम होता जाता है।

9. **कर्म का फल किसको मिलता है? :** कर्म का फल सदा उसी को मिलता है, जिसने कर्म किया है लेकिन उसका प्रभाव या परिणाम दूसरों को भी मिलता है। फल हमेशा कर्मानुसार ही मिलता है जितना करते हैं उससे अनन्त गुणा मिलता है। तथा फल देने वाला ईश्वर सदा हमारे कर्मों को ठीक-ठीक जानता है। अत: हमारे हानि या लाभ ही की क्षति-पूर्ति भी वह करता है।

10. **हमें कर्मफल देने वाले कौन-कौन हैं? :** कर्मफल देने वाले इस लोक में माता-पिता, गुरुजन, राजा, अधिकारी, न्यायाधीश

और समाज होता है किन्तु ये अल्पज्ञ होने के कारण, अल्पशक्ति वाले होने के कारण इनके न्याय में न्यूनाधिकता हो सकती है। राग–द्वेष से युक्त होने के कारण जान–बूझकर या अनजाने में भी पक्षपात सम्भव है। लेकिन अन्तिम फल देने वाला तो ईश्वर ही है और वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी और निष्पक्ष होने से उसके न्याय में कभी न्यूनाधिकता नहीं होती, अपितु लोक में घटित हुई न्यूनाधिकता को भी वह भरता है, उसकी क्षति–पूर्ति भी ईश्वर करता है। अर्थात् कम मिला तो पूर्ति करता है और अधिक मिल गया तो अधिग्रहण भी करता है। किन्तु अन्ततः किसी के भी साथ अन्याय नहीं होता अथवा कम या ज्यादा दण्ड नहीं मिलता, अपितु न्याय से पूरा–पूरा फल मिलता है।

11. **कृत क्या है? :** जो कर्म हमने स्वयं किया है।

12. **कारित क्या है? :** जो किसी दूसरे को कहकर उससे करवाया है।

13. **अनुमोदित कर्म क्या है? :** अनुमोदित कर्म वह है जो कोई अन्य व्यक्ति कुछ कर्म कर रहा था और हमने उसका अनुमोदन कर दिया। ये पुण्य कर्म या पाप कर्म दोनों भी हो सकते हैं।

14. **कर्माशय कम कैसे होता है? :** सुख–सुविधा, साधन, आदि के मिलने से या लेने से उतना–उतना पुण्य का कर्माशय कम हो जाता है। यथा– भोजन, वस्त्र, जल, विद्युत्, ज्ञान, सम्मान, रूप, यश, शरीर, माता–पिता, जमीन, सम्पत्ति इत्यादि। जितना हमने भोग लिया उतना ही हमारा खाता खाली हो गया, अन्याय या न्यायपूर्वक किसी के द्वारा असुविधा या बाधा देने पर उतना–उतना पाप कर्माशय भी कम हो जाता है।

15. कर्मफल क्यों दिया जाता है तथा उसका प्रयोजन क्या है? : गुरु, माता–पिता या ईश्वर हमें जो दण्ड देते हैं, उनका प्रयोजन हमें दु:ख देना नहीं होता, अपितु हमारे सुधार या उन्नति के लिए ही देते हैं। इसी प्रकार कर्मफल व्यवस्था हमारी उन्नति व सुख के लिए ही है तथा सृष्टि में न्याय व्यवस्था बनाये रखने के लिए है।

16. पुण्य का फल क्या है? : उन्नति का अवसर या साधन प्रदान करने के लिए अथवा शुभ के प्रति प्रोत्साहन या फल भोग कराने के लिए पुण्य का फल होता है।

17. पाप का फल क्या है? : अशुभ के प्रति हतोत्साह, सुधार या फल भोग कराने हेतु पाप का फल मिलता है। किन्तु बिना भोगे फल की समाप्ति कदापि नहीं होती मुक्ति अवस्था को छोड़कर।

18. कर्म कितने प्रकार के हैं? : जितने भी कर्म हम करते हैं मुख्य रूप से उन्हें दो भागों में बाँट सकते हैं–सकाम कर्म एवं निष्काम कर्म।

19. सकाम कर्म कौन से हैं? : भौतिक सुख–सुविधा व सम्मान के लिए जो काम किये जाते हैं, वे **सकाम कर्म** कहे जाते हैं। वे पाप या पुण्य दोनों हो सकते हैं।

20. निष्काम कर्म क्या हैं? : यदि हमारे कर्म का लक्ष्य भगवान् को पाना है या मुक्ति को पाना है तो वह निष्काम कर्म से ही सम्भव है। भले ही ऊपर से देखने में वह सांसारिक काम या गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए किये जाने वाला शुभकर्म, यानि नि:स्वार्थ कर्म भी क्यों न हो। निष्काम कर्म हमेशा पुण्य कर्म ही होते हैं। यहाँ निष्काम का अर्थ दिव्य कामना से रहित कर्म, ऐसा

कदापि नहीं है क्योंकि कभी भी कोई कर्म कामना के बिना तो हो ही नहीं सकता, भले ही वह भगवान् को पाने की ही कामना क्यों ना हो। हाँ, किसी ने अपने जीते जी मुक्ति को प्राप्त कर लिया और शरीर अभी बचा हुआ है तो उस जीवनमुक्त योगी के माध्यम से जो कर्म होंगे, उनको कामना रहित या निष्काम कर्म कह सकते हैं। हमें हमारी कामना के अनुसार भी फल मिलता है, लेकिन उतनी मात्रा में मिलेगा, जितनी मात्रा में वह पुण्य कर्म किये हैं। यदि कामनाएँ पूरी नहीं हो रही हैं तो समझ लेना कि मेरे पुण्य कर्म कम थे, इसलिए अब पुण्यों को और अधिक बढ़ाना है।

21. **जीवन या साधना की सबसे बड़ी बाधा क्या है? :** प्रवाह से अनादिकाल से चला आ रहा पिछला कर्माशय व संस्कार हमारा पीछा करता है। जीवन में हम बार-बार आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं और ये पिछला अशुभ कर्माशय व संस्कार हमारा पीछा नहीं छोड़ता। प्रबल शिवसंकल्प, समर्थ गुरु का मार्गदर्शन, कठोर तप, साधना व सेवा से ही इस पिछले अशुभ कर्माशय व संस्कारों को समाप्त किया जा सकता है। कब कौन-सा कर्माशय व संस्कार का विपाक (कर्म का फल) हमारे सामने आ जाए और जीवन में अंधेरा हमें घेर ले, अतः हर पल जागरूक रहें। ज्ञान, निष्ठा व निष्काम कर्म (सेवा) के आश्रय से ही हम इन विकारों से बच सकते हैं।

22. **कौन से पाप या पुण्य कर्मों का फल शीघ्र मिल जाता है? : जो व्यक्ति संसार के उपकार में लगे हैं, श्रेष्ठ, आध्यात्मिक, साधक, योगिजन हैं और उनकी सेवा में जो**

लगे हैं, उन लोगों के पुण्य का फल अपेक्षाकृत अन्य कर्मफल की अपेक्षा शीघ्र मिलता है। इसी प्रकार किसी दुर्बल, भयभीत, बालक, वृद्ध, स्त्री, हमारे आश्रित, धर्मात्मा, योगी, श्रेष्ठ पुरुष हैं, उनके प्रति किया गया अपराध हमें शीघ्र फल देने वाला होता है अर्थात् हमारे उस कर्म के द्वारा समाज का बड़ा हित या अहित हो रहा है, अथवा किसी सज्ज़न या धार्मिक, आध्यात्मिक व्यक्ति के प्रति किया गया पुण्य या पाप अधिक फलदायी होता है। महाभारत में एक वर्णन आता है कि जिस प्रकार हजारों गायों की भीड़ के बीच में भी बछड़ा अपनी ही माँ के पास जाता है, उसी प्रकार हमारा कर्म हमारा पीछा करता हुआ हमारे ही पास आता है। एक दिन में जीवन यापन करने के लिए जो भोजन, वस्त्र, वायु, जल, मकान, बिजली, माता–पिता, गुरुजनों की सेवा हम लेते हैं, इस सारे क्रम में लाखों–करोड़ों आत्माएँ हमारा सहयोग ईश्वरीय विधान से कर रही हैं और साथ ही इन्तजार भी कर रही हैं कि कब हमें मौका मिले और हमारा उद्धार हो। अतः अब यदि हम जागरूक नहीं हुए तो उनकी जगह हमें कई गुणा ज्यादा सेवा देनी पड़ेगी और हमारी जगह यह सुनहरा अवसर उनको दे दिया जायेगा और यदि हम प्रतिपल अपने स्थूल व मानस कर्म के प्रति सजग रहते हुए इसका सदुपयोग करें तो इन सब दुःखों, कष्टों व क्लेशों से अत्यन्त मुक्ति पाकर उस परम सुख को पा सकते हैं। **“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन”।**

स्वभाव, वाणी, व्यवहार व आचरण में परिवर्तन कैसे लायें?

हमारे जीवन की सबसे बड़ी चुनौती या समस्या है–'स्वभाव में परिवर्तन' और जीवन की सबसे बड़ी सफलता या उपलब्धि है–हमारा स्वभाव सुधर जाये, अच्छा स्वभाव बन जाये।

प्रश्न : हमारा मूल स्वभाव क्या है?

उत्तर : प्रेम, करुणा, सेवा, वात्सल्य, निरभिमानिता, पुरुषार्थ, तप, पवित्रता, सात्त्विकता, ब्रह्मचर्य, शान्ति, अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, सेवा करना, संतोष रखना, गुस्सा न करना इत्यादि हमारे मूल स्वभाव के लक्षण हैं। एक वाक्य में कहें तो जिस स्थिति में हम चौबीस घण्टे सहज भाव से रह सकते हैं, वही हमारा स्वभाव है और जिससे कुछ ही समय के बाद हम विचलित होकर उससे निकलना चाहते हैं, छूटना चाहते हैं–वह हम पर आरोपित किया हुआ है, अर्थात् वह हमारा स्वभाव नहीं है।

घर में, परिवार में, संगठन में, समाज, राष्ट्र और पूरे विश्व में जो भी दुःख, कष्ट, क्लेश, संघर्ष, टकराव, मनमुटाव, झगड़े, परेशानी व पीड़ायें हैं, उन सबका एक ही कारण है–बुरा स्वभाव। अक्सर हम लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं कि यह तो स्वभाव से ही लाचार है अथवा स्वभाव तो कभी बदला नहीं जा सकता। मैं अपना स्वभाव नहीं बदल सकता। मैं तो ऐसा ही हूँ, क्या करूँ? इत्यादि वाक्य हम अक्सर रोज़मर्रा के जीवन में सुनते रहते हैं। व्यक्ति माता-पिता, घर-परिवार, गुरु, धन, ऐश्वर्य सबकुछ छोड़

सकता है किन्तु बुरे स्वभाव को छोड़ना महाकठिन है। हम देश के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, उद्योगपति, धनवान या विद्वान् बन जायें यह बहुत कठिन है, पर स्वभाव को बदलना संसार में सबसे कठिन है।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानिवान् अपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रह किं करिष्यति॥ (गीता)

प्रकृतिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला। –*(नीति वाक्य)*

व्यक्ति जीवन भर शास्त्रों से, संतों से, गुरुजनों से अच्छी–अच्छी बातें जानता व सुनता है, लेकिन अपना स्वभाव उसे वहीं लाकर खड़ा कर देता है। सुनना और जानना उसी का सार्थक हो पाता है जो वैसा ही अपना स्वभाव बना लेता है।

"य एवं वेद, स एवं भवति"॥

बुरी आदतें मुख्य रूप से दो स्तर पर होती हैं–1. वैयक्तिक स्तर पर 2. सामाजिक स्तर पर।

वैयक्तिक दोष– जो हमें ज्यादा दुःख देते हैं तथा दूसरों को थोड़ा कम दुःख देते हैं, जैसे– देर से उठना, आहार की अनियमितता, असंतोष, अशुचिता, नास्तिकता, अकर्मणयता, व्यायाम आदि न करना, दूसरों से सेवा लेना इत्यादि।

सामाजिक दोष– वाणी और व्यवहार से हिंसा करना, चोरी, झूठ, अब्रह्मचर्य, कदाचार, दुराचार, कठोर बोलना, चुगली करना, तोड़–फोड़ करना, गुटबाजी करना, दूसरों की खिल्ली उड़ाना, झगड़े करना या करवाना, दूसरों पर शक करना, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, नफरत, परिवार, समाज या संगठन में फूट डालना–ये ऐसे दोष हैं जिनका हमें ज्ञान नहीं होता और ये अपने साथ–साथ परिवार,

समाज, राष्ट्र और विश्व को भी कष्ट देने वाले होते हैं।

प्रश्न : हमारी मूल प्रकृति के शुद्ध होते हुए भी हमारे स्वभाव में दोष क्यों आ जाता है?

उत्तर : इसका सीधा सा उत्तर है–इन्द्रिय दोष या संस्कार दोष के कारण। स्वभाव तो एक परिणाम है, एक कार्य है, लेकिन इसका कारण क्या है? इसके दो कारण हैं–

1. पहला : ज्ञात अथवा दृश्य कारण– ज्ञान, निष्ठा और कर्म का परिणाम होता है स्वभाव।

जैसा ज्ञान–वैसी निष्ठा, जैसी निष्ठा–वैसी प्रवृत्ति, जैसी प्रवृत्ति–वैसा संस्कार और जैसे संस्कार–वैसा स्वभाव। ज्ञान जितना परिष्कृत होगा उतना ही स्वभाव बदलता जायेगा। अल्पज्ञान, मिथ्याज्ञान के कारण ही हमारी निष्ठायें डगमगाती हैं और बार–बार भूल करने से हमारे वैसे ही संस्कार और स्वभाव बन जाते हैं। **इसलिए ज्ञान का अतिरेक, निष्ठा की पराकाष्ठा, कर्म अर्थात् अत्यन्त पुरुषार्थ हमें बुरे स्वभाव से बचा सकते हैं। हम किसी शुभ कर्म में हम इतने तल्लीन हो जायें कि गलत सोचने के लिए समय ही न मिले। हमारा स्वभाव हमारे संकल्पों का ही परिणाम है। दृढ़ संकल्प से हम बुरे से बुरे स्वभाव को भी बदल सकते हैं। अतः जब तक हम कारण को नहीं समझेंगे, तब तक निवारण नहीं होगा।**

2. दूसरा : अज्ञात अथवा अदृश्य कारण– अनादिकाल से चला आ रहा जीवन का प्रवाह अनेक योनियों में से होकर हम मनुष्य योनि में आये हैं। उन सब योनियों के संस्कार भी सूक्ष्म रूप

से हमारे चित्त में समाहित रहते हैं। बुरे स्वभाव को बदलने से पहले प्रश्न यह उठता है कि मैं अपने स्वभाव को क्यों बदलना चाहता हूँ। इसके अनेक उत्तर हो सकते हैं, जैसे गुरु ने कहा है, शास्त्रों में लिखा है, दूसरे लोग कहते हैं, समाज ऐसा मानता है इसलिए अथवा मैं खुद ही अपने बुरे स्वभाव से परेशान हूँ या हानि देख रहा हूँ इसलिए। इनमें से दूसरा कारण स्वभाव परिवर्तन के लिए अधिक कारगर है।

प्रश्न : स्वभाव व संस्कारों को कैसे बदलें?

उत्तर : मनःस्थिति तथा परिस्थिति के अनुसार स्वभाव परिवर्तन के कुछ तात्कालिक प्रचलित उपाय हैं और कुछ अंतिम या दीर्घकालिक उपाय हैं। तात्कालिक में जैसे गुस्सा आ रहा है, तो ठण्डा पानी पी लें। किसी को देखकर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा उत्पन्न होती है तो ईश्वर का स्मरण कर लें इत्यादि लेकिन सदा-सदा के लिए स्वभाव परिवर्तित करने हेतु कुछ उपाय इस प्रकार हैं–

1. गुरु, शास्त्र, अपने अनुभव, प्रकृति व अन्तःकरण की प्रेरणा से प्राप्त ज्ञान का अनादर कभी न करें, अर्थात् इन सभी स्त्रोतों से प्राप्त ज्ञान के अनुसार ही जब हम जीवन जीयेंगे तो हमारे स्वभाव में दोष पैदा ही नहीं होगा। हम अपनी मूल प्रकृति से जुड़े रहेंगे। हम खुद भी शान्त रहेंगे और दूसरों को भी अशान्त नहीं करेंगे। गुरु के प्रति अखण्ड निष्ठा होने पर उनके द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन से भी अत्यंत दोषपूर्ण स्वभाव भी बदल जाता है।
2. **दोषपूर्ण स्वभाव को स्वीकार करना व उसमें दुःख का दर्शन करना–** जब हम अपने दोष को हृदय से स्वीकार कर

लेते हैं, तो उसका निवारण भी कर लेते हैं। महापुरुष किसी भी अशुभ स्वभाव व आचरण में एक बार दुःख का दर्शन करके सदा–सदा के लिए उससे मुक्त हो जाते हैं–जैसे महर्षि दयानन्द, गुरु शरणानंद जी महाराज, स्वामी सोमानंदजी महाराज, महर्षि रमण, महात्मा बुद्ध इत्यादि।

3. **ध्यान व प्रार्थना करें–** नियमित ध्यानयोग व प्रभात संकल्प का अभ्यास करें। ध्यान व प्रार्थना यदि प्रामाणिकता के साथ सच्चे हृदय से निकली हो तो उसका उत्तर हमें अवश्य मिलेगा, जैसे–छोटे बच्चे का रोना।
4. **सत्संग के द्वारा–** ऐसे तेजस्वी महापुरुष जिनका प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ता है, उनके संग से भी स्वभाव परिवर्तित हो जाता है।
5. **पूर्ण पुरुषार्थ–** सूक्ष्म होने से कर्माशय को तो हम नहीं बदल सकते परन्तु पूर्ण पुरुषार्थ से अपने प्रारब्ध को बदल सकते हैं।
6. **स्वाध्याय–** जो आप्तपुरुष आज हमारे बीच में सशरीर नहीं हैं, उनके वचनों को बार–बार पढ़कर वैसा ही आचरण करने से भी स्वभाव परिवर्तित हो जाता है।
7. **प्रायश्चित करना– प्रायः**–निश्चय से, **चित्त**–तप। निश्चय के साथ जो तप किया जाता है, वह प्रायश्चित है अर्थात् बिना किसी और को बताये उपवास आदि के द्वारा अपने आपको स्वयं दण्डित करने से भी भविष्य में वैसी भूल करने से बच जायेंगे।

यदि सामान्य भाषा में हम कहें तो व्यक्ति का स्वभाव है जिसमें वह सुख देखता है, उस कार्य में प्रवृत्त होता है और जहाँ हानि देखता है उससे बचना चाहता है। हो सकता है जिसमें वह सुख देख रहा है, उसमें सुख न हो। जैसे– बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि पीने वाला उसमें सुख देखता है, इसीलिए उसमें प्रवृत्त होता है लेकिन वास्तव में उसमें सुख नहीं है, किन्तु जैसा भी अल्प ज्ञान, मिथ्या ज्ञान उसके पास है, उसके अनुसार वह लाभ वाला कार्य ही करता है, हानि वाला नहीं।

प्रश्न : क्या हम सचमुच अपने बुरे स्वभाव को बदल सकते हैं?

उत्तर : अपने स्वभाव में आज तक कुछ न कुछ परिवर्तन न किया हो संसार में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है। जब हम एक दोष को छोड़ सकते हैं, तो दूसरे दोषों को भी छोड़ सकते हैं। शान्तचित्त होकर ध्यानावस्था में अच्छे संस्कारों को उभारकर बुरे संस्कारों को क्षीण करना, यही स्वभाव परिवर्तन का अंतिम व सशक्त उपाय है।

❦❦❦

200 करोड़ वर्ष पुरानी भारत की आध्यात्मिक संस्कृति पर कैसे भारी पड़ रहे हैं यूरोप व पश्चिम की भोगवादी व भौतिकवादी अपसंस्कृति के 200 वर्ष

एक अरब, छियानवे करोड़, आठ लाख, तरेपन हजार, एक सौ चौदह (1,96,08,53,114) वर्ष पुरानी वैदिक संस्कृति, सभ्यता व ऋषि परम्परा वाले देश भारत के अधिकांश आधुनिक युवाओं के माइंड सैट कैसे परिवर्तित किए जा रहे हैं। उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक सोच में पश्चिम के आदर्शों, सिद्धांतों व विचारधाराओं को कैसे डाला जा रहा है। कैसे भारत को सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से गुलाम बनाया जा रहा है–

इस सन्दर्भ में बहुत विचार, मंथन व चिन्तन करके हम कुछ निष्कर्ष पर पहुँचे। हम आपसे ये विचार इसलिए साझा कर रहे हैं जिससे कि हम सब मिलकर इस पूरे चक्रव्यूह को तोड़ सकें एवं एक आध्यात्मिक व आर्थिक शक्ति सम्पन्न परम वैभवशाली भारत का निर्माण कर सकें।

1. **असंयम को प्रोत्साहनः** हमारे बच्चों के कोमल दिल–दिमाग में बचपन से ही स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक एक भोगवादी विचार को बहुत ही चतुराई से डाला जाता है कि जीवन में सब टेस्ट एक बार जरूर लेकर देखने चाहिए, चाहे वह नशा, वासना, मांसाहार या अन्य कोई भी उपभोक्तावादी तामसिक वाणी, व्यवहार,

आहार, कला व नृत्य आदि क्यों न हो।

जबकि हमारे पूर्वज ऋषि-ऋषिकाओं, वीर-वीरांगनाओं का निर्विवादित रूप से यह मानना है कि पाप, अनाचार, दुराचार, नशा, मांसाहार, अश्लील, अनैतिक एवं अधार्मिक कार्य को एक बार भी नहीं करना चाहिए। एक क्षण के लिए भी हमें अपने मानव जीवन में अशुभ, अज्ञान, अनाचार व अपवित्रता को स्थान नहीं देना चाहिए। क्या हम साइनाइड का एक भी बार टेस्ट लेकर देखेंगे? क्या हम बिजली के करंट या आग में हाथ डालकर देखेंगे?

2. भोगवाद का महिमामण्डन : प्रचार माध्यमों का दुरुपयोग करके आधुनिक युवाओं के मन में इस भोगवादी एवं भौतिकवादी विचार को मन में गहरा बिठा दिया कि "खूब कमाओ, खूब खाओ व भोगो"। हमें योगी से भोगी व रोगी तथा उपासक से उपभोक्ता बना दिया।

हमारे यहाँ जीवन का आदर्श था—क्या इसके बिना भी मेरा गुजारा हो सकता है? तथा पूर्ण विवेक व भाव के साथ पुरुषार्थ करते हुए न्यायपूर्ण तरीके से जो कुछ भी ऐश्वर्य मुझे मिलता है उसमें से मेरे तथा मेरे परिवार आदि के लिए जो नितान्त आवश्यक है उसे अपने लिए रखकर शेष सब सेवा में समर्पित करने की हमारी तप, त्याग, दान व सेवा की पावनी परम्परा रही है। त्यागवाद, अध्यात्मवाद व ट्रस्टीशिप की परम्परा अर्थात् सब कुछ भगवान् का है—

ईशावास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ —यजु. 40/1

इस ऊँची व आदर्श परम्परा के स्थान पर चारों ओर भोगवाद व बाजारवाद का तृष्णा भरा दूषित वातावरण बना दिया और अन्तहीन विनाश के रास्ते पर मनुष्य को खड़ा कर दिया।

3. पश्चिम का महिमामंडन : जो कुछ भी अच्छा है वह पश्चिम से आया है चाहे वह साइंस एंड टैक्नोलॉजी है अथवा, कलचर सिविलाइज़ेशन, डवलपमेंट रिसर्च एवं इन्वेंशन कुछ भी है। जबकि हकीकत यह है कि 500 साल पहले अमेरिका का कोई नाम तक नहीं जानता था, दो हजार वर्ष से पहले की यूरोप की कोई संस्कृति नहीं थी। इसी प्रकार चौदह सौ साल पहले इस्लाम का कोई पता न था, तब से हमारी संस्कृति है। दुर्भाग्य से आविष्कारों, इतिहास व विकास के नाम पर दुनियाँ में सबसे अधिक झूठ बोला गया और हिन्दुस्तान के लोगों के मनों में अपने प्रति घृणा तथा हर बात में पश्चिम के प्रति एक आदर्श, आदर व आकर्षण का भाव भरा गया है।

4. भारत की महानता का अनादर : भारत के अधिकांश नेताओं ने अंग्रेजों के साथ मिलकर देश में सबसे बड़ा पाप यह किया कि विश्व के सबसे अधिक धनवान्, प्रज्ञावान्, बलवान् व महान् राष्ट्र को गरीब बता-बताकर लूटते रहे तथा आज भी यह लूट व झूठ निरन्तर जारी है। लुटेरे, दरिद्र, भूखे-नंगे ब्रिटेन को ग्रेट बनाकर हमारे सामने रखा गया।

5. नास्तिकता : जो आँखों से नहीं दिखता उसका अस्तित्व नहीं होता। आत्मा-परमात्मा आँखों से नहीं दिखता, इसलिए दोनों महान् दिव्य शाश्वत तत्त्वों को नकार करके समाज को आत्मविमुख व नास्तिक बना दिया। हमारी संस्कृति में हमें सिखाया जाता है कि

भाई! जो दिखता है वह तो क्षणिक सत्य है।

नित्य, शाश्वत, अखण्ड सत्य कभी भी आँखों से नहीं दिखता, वही अन्तिम नित्य सत्य है तथा सम्पूर्ण दृश्य जगत् भी एक अदृश्य शक्ति से ही उत्पन्न हुआ है। सारा आकार उस निराकार ने ही गढ़ा है। विज्ञान में भी तो हाइड्रोजन व ऑक्सीजन दो अदृश्य तत्वों से ही दृश्य जल तत्त्व बना है। इसी प्रकार रस, गंध, शब्द व स्पर्शगत सत्य आँखों से कहाँ दिखता है?

6. समानता के स्थान पर सहिष्णुता : समानता, बराबरी के स्थान पर भारतवासियों के मन में सहिष्णुता की बात बैठाकर भारत को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व राजनैतिक रूप से खूब लूटा, दबाया व गुलाम बनाया और हमें कहते रहे सहिष्णु बनो, हम जो भी अत्याचार कर रहे हैं उसे सहन करो, अपने लिए समान रूप से न्याय व स्वाभिमान की बात मत करो। इसी नीति के तहत हमारे देश, धर्म, संस्कृति को विदेशियों ने कभी भी बराबरी या समानता का हक नहीं दिया।

7. शोषण पर आधारित न्याय व्यवस्था : ताकत व शोषण पर आधारित न्याय व विकास का ऐसा कुचक्र चलाया तथा ऐसे कानून बनाए जिससे पूरे विश्व में साम्राज्यवादी, पूंजीवादी, बाजारवादी, अधिनायकवादी, शोषणवादी व्यवस्था बहुत ही मजबूत हो चुकी है। यदि विश्व में राजनैतिक लोगों के द्वारा स्थापित कानून व्यवस्था सत्य व न्याय पर आधारित है तो पूरे विश्व के सभी देशों में कानून एक जैसे ही होने चाहिए, परन्तु ऐसा तो नहीं है। अतः शोषण व ताकत पर आधारित कानून व्यवस्था के स्थान पर सत्य व न्याय पर आधारित सभी कानून, नीतियां व व्यवस्थाएं होनी चाहिए।

8. झूठी धर्मनिरपेक्षता : धर्म निरपेक्षता का झूठा नारा देकर पूरे देश को धर्मविहीन व धर्मविमुख बना दिया। आज पढ़े-लिखे नादान लोग खुद को सैक्युलर कहने में गौरवान्वित महसूस करते हैं। भारतीय ऋषियों ने भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति व समृद्धि को धर्म कहा है, हमारे ऋषि-मुनियों ने जीवन मूल्यों, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, संयम, सदाचार एवं अपरिग्रह आदि को अर्थात् वैयक्तिक व सार्वजनिक जीवन के ऊँचे मूल्यों व आदर्शों को ही धर्म माना है। कोई कर्मकाण्ड आदि की क्रिया मात्र को धर्म नहीं माना है। हमारे धर्म ग्रन्थों, वेदों, दर्शन, स्मृतियों व अन्य आर्ष ग्रन्थों में सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान सन्निहित है, जबकि पश्चिम में ऐसा नहीं होने से धर्म के बारे में वहाँ बहुत ही भ्रमपूर्ण विचारधारा है।

9. अवैज्ञानिक विकासवाद : पश्चिम के तथाकथित आधुनिक वैज्ञानिक मनुष्य की उत्पत्ति को एक दुर्घटना या प्राकृतिक संयोग मानते हैं। विज्ञान व विकासवाद के तथाकथित सिद्धांतों के आधार पर मनुष्य का पूर्वज अमीबा व बन्दर को मानते हैं। जबकि आज भी अमीबा है लेकिन वह अमीबा, बन्दर तथा बन्दर विकसित होकर आदमी नहीं बन रहा है। वे मनुष्य को एक सामाजिक जानवर (social animal) कहते हैं। जबकि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने मनुष्य को भगवान् की सर्वश्रेष्ठ रचना तथा अमृतपुत्र कहा है। हम मात्र पांच तत्त्वों के संघात व उसमें आकस्मिक मस्तिष्क की उत्पत्ति नहीं मानते अपितु शरीर, मन, आत्मा व परमात्मा की स्वतन्त्र सत्ता के रूप से न्यायपूर्ण व्यवस्था को मानते हैं तथा मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य सभी अपूर्णताओं से मुक्त होकर

अतिमानवत्वयुक्त दिव्य जीवन या जीवन मुक्ति को मानते हैं।

10. अहिंसा व शान्ति के नाम पर हिंसा व युद्ध : अहिंसा व शान्ति के सार्वभौमिक व सार्वकालिक नियमों के स्थान पर पश्चिम ने पक्षपातपूर्ण अहिंसा व शान्ति के झूठे नारे दिए हैं कि केवल इंसान को छोड़कर शेष सभी जीव- गाय, भैंस, भेड़-बकरियाँ, मुर्गे व मछली आदि खाने योग्य हैं। इसके अतिरिक्त मनमाने ढंग से युद्धों व अन्य आर्थिक व सामाजिक संघर्षों में दुनियाँ को धकेलकर अनगिनत अक्षम्य पाप व अपराध पश्चिम ने किए हैं।

11. अनैतिक यौन सम्बन्धों का महिमामण्डन : संयमित यौन सम्बन्धों, परिवार व संस्कारों की वैज्ञानिक परम्परा के स्थान पर पश्चिम अनैतिक व उन्मुक्त यौन सम्बन्धों को महिमामण्डित करके उसे एक अलौकिक सुख का दर्जा दे रहा है। इसके परिणामस्वरूप मानव, संस्कार व सम्बन्धों की दिव्यता से अनभिज्ञ होने के कारण एक असभ्यतापूर्ण पाशविक जंगली अपसंस्कृति का शिकार हो रहा है।

निष्कर्ष के रूप में हम सभी भारतीयों को अपनी गौरवशाली आध्यात्मिक ऋषि परम्परा पर गर्व होना चाहिए और पश्चिम की अवैज्ञानिक दोषपूर्ण अपसंस्कृति से मुक्त राष्ट्र व विश्व के निर्माण के लिए सबको संकल्पित व संगठित होकर काम करना चाहिए।